

॥ श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ॥

अध्याय 6: आत्मसंयमयोग

1/4 (श्लोक 1-6), शनिवार, 20 अप्रैल 2024

विवेचक: गीता विशारद डॉ. संजय जी मालपाणी

यूट्यूब लिंक: <https://youtu.be/QMSEs1sLIdM>

इन्द्रियों के संयमन से अमृत रस की प्राप्ति

गुरु वन्दना एवं दीप प्रज्वलन के साथ आत्मसंयमयोग नामक अध्याय का प्रारम्भ हुआ। यह अध्याय अपने आप में एक अद्भुत अध्याय है। यह अध्याय इसलिए भी सुन्दर है क्योंकि जब हम पढ़ते थे तब हमें कक्षा में भी पढ़ाया जाता था और लेबोरेटरी में भी पढ़ाया जाता था।

मन यही चाहता था कि यह लेबोरेटरी में ही पढ़ाया जाए क्योंकि लेबोरेटरी में कुछ करने को मिलता था। कक्षा की शिक्षा शैक्षणिक होती थी। वह मस्तिष्क तक जाती थी किन्तु लेबोरेटरी की शिक्षा में हमें कुछ अनुभव मिलता था एवं हमें कुछ करने को मिलता था। लेबोरेटरी में हमें नीले रङ्ग और लाल रङ्ग का लिटमस पेपर पकड़ाया जाता था और कहा जाता था कि यह हाइड्रोक्लोरिक एसिड है और इसमें डाल कर देखो क्या इसका रङ्ग बदलता है? हम उसमें डालते थे, नीले रङ्ग का कोई रङ्ग बदलता नहीं था। फिर लाल रङ्ग का लिटमस पेपर दिया जाता था। जैसे ही हम लाल रङ्ग के लिटमस पेपर को उस एसिड में डुबोते थे तो रङ्ग बदल जाता था और वह नीला हो जाता था।

एक छात्र का मन हुआ कि लिटमस पेपर को घर ले जाया जाए पर शिक्षक ने उसे मना करते हुए कहा कि यह विद्यालय का है और मैं तुम्हें नहीं दे सकता किन्तु यह कैसे बनाया जाता है, वह बता सकता हूँ। उन्होंने घर पर लिटमस पेपर कैसे बनाया जाता है, वह विद्या भी सिखाई। लाल रङ्ग के पाँच पड़खुड़ी वाले जासवन्ती के जो फूल होते हैं, उनको रगड़कर, उसका रङ्ग उतारकर कागज पर लगाया जाता है किन्तु उससे लाल नहीं अपितु नीला लिटमस पेपर बनता है। जैसे ही जासवन्ती का फूल लेकर उससे नीला लिटमस पेपर बनाया तो नींबू का रस जो कि सिट्रिक एसिड है, उस पर डाला तो वह लाल हो गया।

यह एक प्रयोग था किन्तु हमारा (हार्ट) दिल, हमारे (हैंड्स) हाथ और हमारा (हेड) सिर मतलब मस्तिष्क, दिल और शरीर यहाँ एक साथ जुड़ गए। योग इन तीनों को मिलाता है। आपके शरीर, (मन) हृदय और आपके मस्तिष्क का जुड़ना ही योग की शुरुआत है।

दो प्रकार के योग होते हैं- बहिरङ्ग और अन्तरङ्ग। ये दोनों ही योग अद्भुत हैं। आसन या प्राणायाम बाहर से देखे जा सकते हैं किन्तु हमारे अन्दर ही अन्दर क्या चल रहा है, हमारे मन में क्या है? वह अन्तरङ्ग योग कहलाता है। बहिरङ्ग योग से आरम्भ करते हुए हम अन्तरङ्ग योग तक जाते हैं।

महर्षि पतञ्जलि ने योग सूत्र बनाकर दिया-

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, योग के इन आठों भाग में समत्व की बात की गई है। उन्होंने हमें पहले उपयोग बताए। उसके पश्चात योग के सूत्र बताए तो अधिक समझ में आते हैं।

एक बार भौतिक विज्ञान के प्रोफेसर (स्पीड) गति के बारे में पढ़ाने वाले थे। उन्होंने कहा कि आप लोगों में से जो भी स्कूटी अथवा स्कूटर लेकर आए हैं, अपने-अपने हाथ उठा दें। जिन विद्यार्थियों ने हाथ उठाए, उनसे उन्होंने पूछा कि कितनी स्पीड (गति) से आए हो? सबने अलग-अलग उत्तर दिए। कोई सौ की स्पीड से आया था, कोई पचास की एवं कोई अस्सी की तथा कोई साठ की। फिर एक विद्यार्थी से उन्होंने पूछा कि साठ की स्पीड से क्या अभिप्राय है? जब किसी को उत्तर नहीं आया तो उन्होंने कहा कि आज आप लोग घर जाकर अपना-अपना स्पीडोमीटर देखना कि उस स्पीडोमीटर पर क्या-क्या लिखा है? जब आप ऐसा करके आएँगे, तब मैं आपको गति के बारे में समझाऊँगा। सब विद्यार्थियों ने अपने-अपने घर जाकर अथवा जिसके घर वाहन था उसकी सहायता से स्पीडोमीटर को चेक किया और उन्होंने यह बात नोट की, कि स्पीडोमीटर पर किलोमीटर प्रति घण्टा (km/hr) ऐसे करके लिखा रहता है। अगले दिन अध्यापक ने जब गति के बारे में पढ़ाया कि दिए गए समय में हम जितनी दूरी तय करते हैं उसे गति कहा जाता है तो बड़ी सरलता से गति की परिभाषा समझ में आ गई। इसके साथ ही अध्यापक ने एक बात और समझा दी कि जब आप अनेक मोड़ लेकर अपने गन्तव्य तक पहुँचते हैं, तब आपके किलोमीटर बढ़ जाते हैं। यदि हवा में आपके घर से गन्तव्य तक सीधी काल्पनिक रेखा खींचें तब जो दूरी मिलेगी उसे डिसप्लेसमेंट कहा जाता है और फिर वेलोसिटी (velocity) अर्थात् वेग की भी व्याख्या कर दी जिससे हमें पता चलता है कि यहाँ से वहाँ पहुँचने में कितना समय लगा।

इस तरह भगवान श्रीकृष्ण हमें व्याख्या करके समझा रहे हैं। जब हम प्रयोग करके ज्ञान का अनुभव करते हैं, तब हमें अद्भुत आनन्द आता है। जब हम छोटे अध्याय को पढ़ते हैं तो हमें वही आनन्द प्राप्त होता है।

6.1

श्रीभगवानुवाच

अनाश्रितः(ख) कर्मफलं(ङ), कार्यं(ङ) कर्म करोति यः।

स संन्यासी च योगी च, न निरग्रिर्न चाक्रियः॥१॥

श्रीभगवान् बोले -- कर्मफल का आश्रय न लेकर जो कर्तव्य कर्म करता है, वही संन्यासी तथा योगी है; (और) केवल अग्नि का त्याग करने वाला (संन्यासी) नहीं होता तथा (केवल) क्रियाओं का त्याग करने वाला (योगी) नहीं होता।

विवेचन: कर्म फल का आश्रय न लेकर जो कर्म करता है वही संन्यासी एवं योगी है। योग के द्वारा या संन्यास के द्वारा पहुँचना तो एक ही स्थान पर है। जिस तरह अगर आपको दिल्ली जाना है, आप स्कूटर से जाएँ या किसी और वाहन से तो कोई अन्तर नहीं पड़ने वाला है क्योंकि आपकी मंजिल एक ही है। इसी तरह संन्यासी हो या योगी, रास्ता अलग है किन्तु मंजिल एक ही है। केवल अग्नि का त्याग करने वाला संन्यासी नहीं होता। संन्यासी में न्यासी शब्द आता है। न्यासी मतलब ट्रस्टी, विश्वस्त अर्थात् वह कार्य तो सम्भाल रहा है किन्तु उसके अन्दर यह भावना नहीं है कि यह केवल मैं ही सम्भाल रहा हूँ। इसके स्थान पर सब कुछ भगवान सम्भाल रहे हैं जैसा भाव आ जाए तो वह संन्यासी हो जाएगा।

प्राचीन समय में अग्नि प्रज्वलित करना बहुत ही कठिन कार्य होता था। पत्थर से पत्थर घिसो और लकड़ी से लकड़ी घिसो तब अग्नि निकलती थी। यज्ञ के समय में रस्सी से अग्निमन्थन किया जाता और अनेक प्रयासों से अग्नि प्रज्वलित की जाती थी। भोजन के लिए उसको सम्भाल कर रखना होता था अतः उसे बुझने नहीं देना होता था।

जो गृहणी होती थी, वह अग्नि की सेवा करती थी। उसे अग्नि बचा के रखनी होती थी किन्तु जो संन्यासी होता था उसे भिक्षा माँगनी होती थी। उसे अग्नि की सेवा की आवश्यकता नहीं थी इसलिए संन्यासी को यह नियम दिया जाता था कि अब तुम अग्नि को स्पर्श नहीं कर सकते। उसे अपनी देह की चिन्ता नहीं करनी थी। तब केसरिया रङ्ग पहनना त्याग का प्रतीक होता था अतः

हमारा झण्डा भी भगवा होता है क्योंकि यहाँ अब प्राणों की चिन्ता नहीं, प्राणों का त्याग देश के लिए करने की इच्छा लेकर निकला हूँ, अतः भगवा रङ्ग त्याग का प्रतीक है। जहाँ क्रोध का पूरी तरह से विसर्जन होता है, वहीं संन्यास होता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह का विसर्जन ही संन्यास है।

हमारे यहाँ चार आश्रम बताए गए हैं। उसमें ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम और संन्यास आश्रम हैं। अतः संन्यास के पहले मैं खत्म हो जाए। अब मेरे में जितनी भी ऊर्जा बची है, वह केवल समाज के लिए है। वन में प्रस्थान करने का समय हो गया है।

एक बहुत सुन्दर प्रसङ्ग से इसे समझ सकते हैं:-

एक बार की बात है कि एक मनुष्य संन्यास लेने के लिए वन में चला गया, दो लङ्गोट लेकर और उसने संन्यास ले भी लिया। उसके शिष्य भी बन गए किन्तु जब वह व्यक्ति मरने को था तो शिष्यों ने कहा कि गुरुजी कुछ तो अन्तिम उपदेश दे दो। गुरुजी ने कहा कि देखो बेटा एक बात का ध्यान रखना। बच्चों को अन्तिम उपदेश सुनने की उत्सुकता थी। गुरुजी ने कहा कि बिल्ली कभी भी मत पालना और गुरुजी चले गए। शिष्यों ने सोचा कि ध्यान, धारणा, समाधि के बारे में उन्होंने उपदेश क्यों नहीं दिया। तब एक व्यक्ति जो गुरुजी को जानता था उसने बताया कि जब आपके गुरुजी आए तो दो लङ्गोट लेकर आए थे। सारे वस्त्र भी त्याग दिए थे। एक लङ्गोट पहनते और दूसरी लङ्गोट धो लेते किन्तु एक दिन उनकी कुटिया में चूहे घुस गए। चूहों ने उनकी लङ्गोट कुतर दी। लोगों ने दूसरी लङ्गोट दी लेकिन चूहे तो बढ़ते जा रहे थे। किसी ने कहा कि चूहों से बचने के लिए आप बिल्ली पाल लो, यदि बिल्ली रहेगी तो चूहों को खा लेगी। व्यक्ति ने उन्हें बिल्ली ला दी। बिल्ली आई तो रोज दूध पिलाना पड़ा। फिर लोग बोले कि गुरुजी आप एक गाय पाल लो तो गाय से बिल्ली को दूध मिलता रहेगा। गुरुजी ने गाय पाल ली। गाय रोज गोबर करे, उसको चराने ले जाओ तो गुरु जी का समय गाय में जाने लगा। तब किसी ने कहा कि गाय की देखभाल के लिए एक काम वाली रख लो। एक महिला यहाँ बुला लो, वह सब साफ-सफाई कर देगी। गुरुजी ने एक महिला भी रख ली। महिला से गुरुजी का धीरे-धीरे प्रेम हो गया और विवाह हो गया। अतः उनका त्याग चला गया एवं वह संन्यासी नहीं रह पाए इसलिए उन्होंने कहा कि बिल्ली मत पालना।

अतः हमारी कामनाओं को कम करना एवं योग के मार्ग पर चलना ही उत्तम साधन है। जैसे किसी बच्चे के दो नाम होते हैं किन्तु वह बच्चा एक ही होता है। इसी तरह अन्तिम गन्तव्य एक ही है किन्तु कर्मयोग और संन्यास नामक रास्ते दो हैं। धारणाओं को बदलने से व्यक्ति संन्यासी हो सकता है। जिस प्रकार पृथ्वी वृक्षों को उत्पन्न करती है लेकिन फलों की कामना नहीं करती है। वह असङ्गी बन जाती है। इसी प्रकार असङ्ग के साथ कर्मरत कर्मयोगी संन्यासी ही है। केवल वस्त्रों को बदलने से संन्यास नहीं बल्कि मन की धारणाओं को बदलने से व्यक्ति संन्यासी हो सकता है, यह बात भगवान ने पहले श्लोक में ही कह दी और अमृत मन्थन प्रारम्भ हुआ। यह अध्याय अमृत रस प्राप्ति करने का अध्याय है।

6.2

यं(म्) सन्न्यासमिति प्राहुः(र), योगं(न्) तं(म्) विद्धि पाण्डव। न ह्यसन्न्यस्तसङ्कल्पो, योगी भवति कश्चन ॥2॥

हे अर्जुन ! (लोग) जिसको संन्यास ऐसा कहते हैं, उसी को (तुम) योग समझो; क्योंकि संकल्पों का त्याग किये बिना (मनुष्य) कोई-सा (भी) योगी नहीं हो सकता।

विवेचन: सङ्कल्पो का त्याग किए बिना कोई भी मनुष्य योगी नहीं बन सकता। यदि योगी बनना है तो हमारे मन के सङ्कल्पो को हटाना पड़ेगा। हमारे मन में सङ्कल्प न हों ऐसा नहीं, किन्तु उसमें मैं का भाव न हो। जब तक मैं है तब तक योग नहीं और जब तक योग नहीं तब तक संन्यास नहीं। मैं का आरम्भ ही अहङ्कार है।

यदि कोई बड़ा काम करना होता है तो सबको मिलकर करना होता है। अतः संगठन में, मैं की भावना नहीं आनी चाहिए। हनुमान जी जब लङ्का में गए तो जो हुआ है उसको ध्यान में रखें। हनुमान जी जैसे ही लङ्का में जाने के लिए निकले तो सबसे

पहले मैनाक पर्वत आया। उसने कहा कि आप जरा विश्राम करो, मैं आपके पिताजी का मित्र हूँ। मैं आपको बहुत ही सुन्दर-सुन्दर फल खाने को दूँगा। हनुमान जी नहीं रुके। योग के मार्ग पर रुकना नहीं होता है, निरन्तर आगे ही बढ़ना होता है। आगे चलकर सुरसा नाम की राक्षसी मिली। तब हनुमान जी ने अति लघुरूप धारण किया और जल्दी से अन्दर गए और जल्दी से बाहर आ गए। वह सुरसा थी, हम भी यदि रसों में आनन्द लेने लग जाँएँ तो मैं नहीं मिटेगा। सुरसा जब-जब हमारे जीवन में आए तब-तब मैं शून्य बन जाऊँ, यही हनुमान जी हमें सिखाते हैं।

हनुमान जी अशोक वाटिका उजाड़ कर सीता जी की खोज करने के बाद एवं सीता जी को मुद्रिका देने के बाद लङ्का को जलाकर आए। उनकी पूछ पर जो कपड़ा बाँधा गया वह भी लङ्का का ही था, जो तेल डाला गया वह भी लङ्का का ही था और जली भी लङ्का ही। बिना किसी साधन के लङ्का को जलाकर आ गए। हनुमान जी ने यह बता दिया कि राम जी का एक दूत इतना बलवान है तो पूरी सेना कैसी होगी। राम जी ने हनुमान जी की प्रशंसा करते हुए कहा:

तुम मम प्रिय भरतहि सम भाई।

तुम तो मेरे भरत के समान प्रिय भाई हो। जब अधिक प्रशंसा होने लगी तो हनुमान जी भगवान के चरणों में गिर गए। भगवान मुझे बचा लो। इससे ज्यादा स्तुति में नहीं सुन पाऊँगा। यदि आप इतनी स्तुति करोगे तो मेरा अहङ्कार जाग जाएगा। यह तो सिर्फ आपकी कृपा थी कि लङ्का को जला दिया। हमारे अन्दर जरा भी मैं नहीं होना चाहिए। तरबूज का बीज छोटा सा होता है किन्तु जब वह जमीन में गाड़ा जाता है तो इतने बड़े-बड़े तरबूज फिर से उग जाते हैं। यदि सिन्धु बनना है तो बिन्दु को अपने अस्तित्व को मिटाना पड़ता है, अतः सृजन करना है तो अपने अस्तित्व को मिटाना ही पड़ता है। सृजन के लिए विसर्जन अति आवश्यक है। यदि बिन्दु अपने आपको सिन्धु में मिला लेता है तो अपना विस्तार कर लेता है। मृत्यु केवल मात्र वस्त्र बदलना है:

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी जठरे शयनम्।

इह संसारे बहुदुस्तारे, कृपयाऽपारे पाहि मुरारे।

यदि बार-बार जन्म लेने से मुक्ति पानी है तो, 'मैं और मेरा' को खत्म करना ही पड़ेगा। जब संन्यास की विधि करवाते हैं तो स्वयं का ही पिण्डदान करवाते हैं। मेरी मृत्यु अर्थात् मेरे अन्दर बैठे उस अहङ्कार एवं मैं की मृत्यु। इसी से मेरा विस्तार है।

6.3

**आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं(ङ्), कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव, शमः(ख) कारणमुच्यते॥3॥**

जो योग (समता) में आरूढ़ होना चाहता है, (ऐसे) मननशील योगी के लिये कर्तव्य कर्म करना कारण कहा गया है (और) उसी योगारूढ़ मनुष्य का शम (शान्ति) (परमात्म प्राप्ति) में कारण कहा गया है।

विवेचनः समत्वं योग उच्यते। सन्तुलन को ही योग कहा गया है। भगवान ने कहा जो योग पर आरूढ़ होना चाहता है, समता पर सवारी करना चाहता है, ऐसे मननशील योगी के लिए कर्तव्य करना कारण कहा गया है।

ऐसे योगी का शम परमात्मा की प्राप्ति का कारण कहा गया है। शम यानी शान्ति। जैसे ही मैं गिर जाता है वैसे ही प्रगाढ़ शान्ति आनी आरम्भ हो जाती है। यही तो योग है, जैसे ही कामनाएँ खत्म हुईं, जीवन में सन्तुलन बढ़ने लगता है। कामना अर्थात् अपेक्षा, जैसे माता-पिता को अपने बच्चों से रहती है कि मैंने अपने बच्चों के लिए इतना सब कुछ किया, पढ़ाया-लिखाया, बड़ा किया और अपेक्षा है कि वे मेरे बुढ़ापे में मेरे लिए सब कुछ करेंगे परन्तु इसकी शादी हुई तो पत्नी और बच्चे, दोनों ही मेरी तरफ नहीं देख रहे हैं। यह मेरी अपेक्षा है किन्तु यदि योगी बनना है तो अपेक्षा छोड़नी होगी। यदि आपकी अपेक्षा नहीं है और किसी ने आपके लिए हलवा बना दिया तो कितनी खुशी होगी। समत्व का अर्थ है बैलेंस (सन्तुलन), पुराने समय में घड़ी होती थी जिसका लोलक इधर से उधर, उधर से इधर होता रहता था। एक अति से दूसरी अति जैसे कि गृहस्थ आश्रम से सीधे वानप्रस्थ में चला जाए। इसके बीच में कुछ दिन घर में ही वृन्दावन बनाना पड़ेगा।

भगवान वृन्दावन में नहीं हैं। भगवान आपके मन में हैं। मेरे अन्दर बैठे भगवान को ही मैं जगाऊँ। यह मेरे घर में ही हो सकता है। उसके लिए वृन्दावन जाने की क्या आवश्यकता है? पहले अन्दर के भगवान को जगाओ, फिर जाकर वृन्दावन को देखो तो उसका आनन्द ही कुछ और है। जब इस तरह आप वृन्दावन में घूमेंगे तो भगवान तो आपको वृन्दावन में रास लीला करते हुए नजर आएँगे। यदि आप भगवान को जगाए बिना जाते हैं तो कोई अनुभूति तो होगी नहीं। आप जैसे गए वैसे ही आपको वापस आना पड़ेगा। न आसक्ति हो और न ही विरक्ति हो। अब तो जो भी मेरा है वह तेरा है, यही कामना है। आपका भोजन, आपकी नींद, आपका काम, आपका व्यायाम कैसा होना चाहिए? इन सब पर नियन्त्रण ही योग है। सभी पर नियन्त्रण एवं मन में ईश्वर का वास होना ही जीवन को सफलता की ओर ले जाता है।

6.4

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु, न कर्मस्वनुषज्जते। सर्वसङ्कल्पसन्न्यासी, योगारूढस्तदोच्यते ॥4॥

कारण कि जिस समय न इन्द्रियों के भोगों में (तथा) न कर्मों में (ही) आसक्त होता है, उस समय (वह) सम्पूर्ण संकल्पों का त्यागी मनुष्य योगारूढ़ कहा जाता है।

विवेचन: जैसे अश्व के ऊपर आरूढ़ होना वैसे ही योग के ऊपर आरूढ़ होना होता है। अतः यदि योग पर आरूढ़ होकर इन्द्रियों की लगाम कसनी है तो भगवान को सारथी बनाना पड़ेगा। जिस तरह अर्जुन ने भगवान को केवल रथ का सारथी नहीं बनाया था बल्कि स्वयं की भी लगाम भगवान के हाथ में सौंप दी थी इसलिए भगवान ने इतना सुन्दर उपदेश अर्जुन को दिया है। अतः हमें हमारी लगाम को भगवान को सौंपना ही पड़ेगा। मनुष्य इन्द्रियों से जब अनासक्त रहता है तब सम्पूर्ण भोग त्यागी मनुष्य को योगी कहा जाता है।

पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं- आँख, कान, नाक, जिह्वा एवं त्वचा। इसी तरह इन पाँचों के विषय भी हैं, कान का विषय है सुनना, आँख का विषय है देखना, जिह्वा का विषय है रसना, त्वचा का विषय है स्पर्श करना। इन्द्रियों के जो विषय होते हैं, उन विषयों को मन जागृत करता रहता है। मनुष्य की शुगर बड़ी हुई है तब भी उसे आम का रस खाने का मन होता है क्योंकि जिह्वा का विषय है रसना। विषयों का आना-जाना लगा रहता है। जब विषयों का आना-जाना सुप्त हो जाए तो मनुष्य योग में आरूढ़ होने लगता है।

विपश्यना जब सिखाई जाती है तब संवेदनाओं एवं साँसों की तरफ केवल देखना है। उनके ऊपर प्रतिक्रिया भी नहीं देनी है और न ही आमन्त्रण देना है। ऐसा जब होता है तो आई हुई संवेदना अपने आप चली जाती है एवं विचारों का आवागमन भी धीमा हो जाता है। योग और रोग एक दूसरे के विलोम शब्द हैं। भूख शरीर को नहीं है किन्तु मन को है। अतः योग का उल्टा रोग होता है। यदि आप योग करते हैं तो रोग अपने आप भाग जाता है किन्तु यदि आप संयमी नहीं हैं तो शरीर रोगों का घर बन जाता है। मन का संयमन करके मनुष्य योग के पथ पर अग्रसर हो जाता है।

6.5

उद्धरेदात्मनात्मानं(न्), नात्मानमवसादयेत्। आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुः(ः), आत्मैव रिपुरात्मनः ॥5॥

अपने द्वारा अपना उद्धार करे, अपना पतन न करे; क्योंकि आप ही अपना मित्र है (और) आप ही अपना शत्रु है।

विवेचन: आप ही आपके शत्रु हैं और आप ही आपके बन्धु भी हैं। ज़िन्दगी की एक एबीसीडी है जिसमें **B** जन्म (बर्थ) और **D** मृत्यु (डेथ) आपके हाथ में नहीं है। **C** चयन (चॉइस), कैसे जीना है यह आपके हाथ में है। हम स्वयं के संयमन से स्वयं के मित्र एवं स्वयं का पतन करके स्वयं के शत्रु बन जाते हैं।

एक बार एक दुकानदार पूजा कर रहा था और वह पूजा करते समय अपने कर्मचारी को गालियाँ भी दे रहा था। यदि आपके क्रोध की बत्ती जली है तो अगरबत्ती जलाने से कोई लाभ नहीं। हमारे यहाँ राम-राम कहकर अभिवादन करने की परम्परा है।

हम एक बार राम-राम बोलते हैं तो सामने वाला दो बार राम-राम बोलता है। हमारे लिए अपने मन को जागृत करना ज्यादा आवश्यक है।

एक बार की बात है। दो शराबी रात को नदी पार कर रहे थे। नदी उफान पर थी। नाव पेड़ पर बँधी थी। दोनों नाव में बैठ गए और रात भर पतवार चलाते रहे किन्तु नाव तो बँधी हुई थी और अपनी जगह से हिली भी नहीं। प्रातः जब उन्होंने देखा तो नाव तो वहीं की वहीं खड़ी थी। ठीक इसी तरह अहङ्कार एवं वासनाएँ हमारी प्रगति को रोकते हैं। हम उसी जगह पर पर गोते खाते रहते हैं क्योंकि हमारा मन इनसे बँधा हुआ है। अतः अहङ्कार, कामनाओं एवं वासनाओं को छोड़ना होगा तभी हम भगवान से एकाकार हो पाएँगे।

6.6

**बन्धुरात्मात्मनस्तस्य, येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे, वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥6॥**

जिसने अपने आप से अपने आपको जीत लिया है, उसके लिये आप ही अपना बन्धु है और जिसने अपने आपको नहीं जीता है, ऐसे अनात्मा का आत्मा ही शत्रुता में शत्रु की तरह बर्ताव करता है।

विवेचन: जिसने स्वयं को स्वयं से जीत लिया है, वही योगी है। सबसे पहली लड़ाई तो स्वयं से ही है।

भगवान ने तीसरे अध्याय में कहा है कि:

**काम एष क्रोध एष, रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा, विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥३.३७॥"**

अर्जुन! दुर्योधन और दुःशासन तुम्हारे शत्रु नहीं हैं। तुम्हारे शत्रु हैं- काम, क्रोध, लोभ, मोह। यही तुम्हारे सबसे बड़े शत्रु हैं। जो इनसे हार गया वह स्वयं ही अपना शत्रु है और जो इनसे जीत गया वह स्वयं ही अपना मित्र है।

यदि आपने एक तोते को बहुत दिनों तक पिंजरे में बन्द करके रखा और एक दिन आपके मन में विचार आया कि करुणा सबके प्रति होनी चाहिए।

गीता जी में भी कहा गया है कि:

**"अद्वेष्टा सर्वभूतानां(म), मैत्रः(ख) करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः(स), समदुःखसुखः क्षमी ॥१२.१३॥"**

आपने पिंजरा खोल दिया किन्तु तोता उस नलिका को छोड़कर बाहर नहीं आता जिसे हमेशा से उसने पकड़ रखा है। उसे लगता है कि वह उस नलिका में ही सुरक्षित है। उसे आदत लग गई है। इसे **शुक नलिका न्याय** कहा जाता है। योगी का प्रवास तो विराट होता है। यह केवल मुक्ति से ही सम्बन्धित है और मुक्त होना है हमारे सञ्कुचित विचारों से, हमारी छोटी सोच से। विसर्जन करना है हमारे अहङ्कार का और सकारात्मक विचारों का विस्तार करना है।

हमारे यहाँ जैसे-जैसे धूप बढ़ने लग जाती है तो कहा जाता है कि छत पर पानी रख कर आना क्योंकि यह पानी उन पक्षियों के लिए है जिनको धूप में प्यास लगेगी, हम पक्षियों का भी सोचते हैं। अतः विचारों का विस्तार करते हुए ज़िन्दगी जीना है। विस्तार का सृजन ही जीवन का उद्देश्य होना चाहिए। योग अर्थात् अपेक्षाओं का त्याग एवं संन्यास दो विभिन्न मार्ग हैं किन्तु मञ्जिल एक ही है भगवत् प्राप्ति।

इसके साथ ही के सारगर्भित विवेचन सत्र का समापन हुआ और प्रश्नोत्तर सत्र आरम्भ हुआ।

प्रश्नोत्तर:

प्रश्नकर्ता: सुमन जी

प्रश्न: संन्यास और योग में कौन सा रास्ता परमात्मा को प्राप्त करने के लिए अधिक उत्तम है?

उत्तर: भगवान ने पाँचवें अध्याय में स्पष्ट किया है कि योग का रास्ता सबसे सरल है। योग का अर्थ है मन से मस्तिष्क को जोड़ना और यह जोड़ना कैसे है इसे हम आगे सीखेंगे। संसार में रहते हुए भी निर्लिप्त रह सकते हैं। अपने घर को ही हम वृन्दावन में परिवर्तित कर सकते हैं। अपने कर्तव्यों से बँधे लोगों को कर्मयोग का मार्ग ही भगवान की तरफ ले जाएगा। जिस तरह पहाड़ दूर से सुहावने लगते हैं, इसी तरह संन्यास का मार्ग आपको आकर्षित लगते हुए भी पर्याप्त कठिन है।

प्रश्नकर्ता: पूनम गुप्ता जी

प्रश्न: आपने बताया कि हमारे जीवन में अहम् नहीं होना चाहिए लेकिन सच में यह नहीं हो ऐसा कैसे होगा और इसे कैसे जानें?

उत्तर: भगवान ने अध्याय सोलह में छब्बीस प्रकार के दैवीय गुण बताते हुए कहा है:

"श्रीभगवानुवाच

अभयं(म्) सत्त्वसंशुद्धिः(र), ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।

दानं(न्) दमश्च यज्ञश्च, स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥१६.१॥"

"अहिंसा सत्यमक्रोधः(स्), त्यागः(श्) शान्तिरपैशुनम्।

दया भूतेष्वलोलुप्त्वं(म्), मार्दवं(म्) हीरचापलम्॥१६.२॥"

"तेजः क्षमा धृतिः(श्) शौचम्, अद्रोहो नातिमानिता।

भवन्ति सम्पदं(न्) दैवीम्, अभिजातस्य भारत॥१६.३॥"

और इसमें सबसे पीछे है **नातिमानिता** अर्थात् अतिमानिता का अभाव। अत्यन्त मान का नाम अतिमान है। वह जिसमें हो वह अतिमानी है। उसका भाव अतिमानिता है। उसका जो अभाव है वह नातिमानिता है। अपने मन का विसर्जन करना। यह सबसे पीछे है लेकिन चुपके से कभी भी हमारे जीवन में प्रवेश कर जाता है। इसके लिए बहुत सजग एवं सावधान रहने की आवश्यकता होती है। अगर ऐसा कर पाएँगे तो निश्चित ही अपने कल्याण के मार्ग पर अग्रसर होंगे।

प्रश्नकर्ता: शशि ठाकुर जी

प्रश्न: योग के पथ पर चलते हुए हम आसन, प्राणायाम तक ही सीमित रह जाते हैं। योग के पथ पर आगे किस तरह से बढ़ना चाहिए?

उत्तर: इसके लिए जीवन में छोटे-छोटे प्रयास करते रहना चाहिए। इन्द्रियों के विषयों के दमन का अभ्यास करते रहना चाहिए और यह छोटे-छोटे से प्रयास आपको इस पथ पर आगे बढ़ाएँगे।

प्रश्नकर्ता: कमल कुलकर्णी जी

प्रश्न: वानप्रस्थ के लिए क्या वन में जाना आवश्यक है?

उत्तर: इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। आप अपने घर में ही इस तरह से निर्लिप्त हो जाएँ कि आपका घर ही आपको वन लगने लगे। जो थाली में आ जाए वही आपका प्रसाद बन जाए और आपकी अपेक्षाएँ शून्यता की तरफ अग्रसर रहें तो घर में ही वानप्रस्थ हो जाता है।

प्रश्नकर्ता: गायत्री जी

प्रश्न: हनुमान चालीसा में ऐसा ही क्यों कहा गया है:

तुम मम प्रिय भरतहि सम भाई। तो यहाँ भरत जी का ही नाम क्यों लिया गया है और शत्रुघ्न जी के बारे में आप क्या कहेंगे?

उत्तर: भगवान मानव जीवन में अवतरित हुए हैं और मानव जीवन में स्वाभाविक रूप से जो पास नहीं, उसकी अधिक याद आती है और भगवान राम का भरत के प्रति अनन्य प्रेम भी इसी कारण से है। एक बहुत सुन्दर प्रसङ्ग है कि भरत को यह संशय

है कि भगवान मुझे प्रेम करते हैं या नहीं और वह भारद्वाज मुनि से जब इस सम्बन्ध में प्रश्न करते हैं तो भारद्वाज मुनि उन्हें बताते हैं कि गङ्गा जी को पार करते समय जब गङ्गा जी के पूजन का सङ्कल्प करने के पश्चात भगवान राम के हाथ में पानी दिया गया तो जैसे ही इस मन्त्र का उच्चारण हुआ-

जम्बूद्वीपे भारतवर्षे भरतखण्डे आर्यावर्ते अमूक राज्यांतर्गत अमूक नगरे... तो भरतखण्डे सुनते ही भगवान राम के हाथ से जल भी गिर गया और वह स्वयं भी पृथ्वी पर गिर गए। ऐसा था भगवान राम का भरत जी के प्रति प्रेम। अब वन में भरत तो हैं नहीं और हनुमान जी भरत जी की तरह ही भगवान की आज्ञा का पालन कर रहे हैं तो ऐसा कहना स्वाभाविक ही है। रामायण में वनवास प्रसङ्ग के समय भगवान राम, लक्ष्मण जी, भरत जी हर किसी ने अपने मन के अनुसार निर्णय लिए, केवल एक शत्रुघ्न ही ऐसे हैं जो अपने मन के विपरीत भाई की आज्ञा का पालन करते हुए अयोध्या का कार्यभार भी सम्भाले हुए हैं और सभी माताओं की सेवा भी करते हैं। सबसे अधिक विरह उन्होंने ही सहन किया। शत्रुघ्न जी का चरित्र अद्भुत है। उनके बारे में जितना भी कहा जाए, कम ही होगा।

प्रश्नकर्ता: भारती सहाय जी

प्रश्न: मैं का त्याग कैसे हो?

उत्तर: वास्तव में अगर आप शान्ति से बैठकर सोचेंगे तो आपको पता चलेगा कि आपके जीवन में अधिकतर कार्य ऐसे हैं जो आपने नहीं किए हैं, जैसे आपका जन्म कहाँ हुआ? आपके माता-पिता कौन हैं? यह सब बातें कभी भी आपके नियन्त्रण में नहीं थीं, अतः कुछ भी हम कर नहीं रहे हैं, हमसे करवाया जा रहा है ऐसा भाव जब हो जाता है तो **मैं** अपने आप से समाप्त होने लगता है। जीवन में जो कुछ प्राप्त हुआ उसके लिए धन्यवाद का भाव और आनन्द की अनुभूति और बिना किसी फलाकाङ्क्षा के कर्म को करते रहने से स्वयं ही **मैं** का नाश होने लगता है।

प्रश्नकर्ता: गीता शर्मा जी

प्रश्न: पिछले एक महीने से मानसिक परेशानी अधिक होने लगी है। कृपया इससे मुक्त होने का कोई उपाय बताएँ?

उत्तर: जब हम कर्त्तव्य कर्मों को भूलने लगते हैं तो हमारा मन ज्यादा विचलित होने लगता है। हमें अपने स्वभावगत कर्मों का त्याग कभी नहीं करना चाहिए। भगवान ने हमें यही समझाने के लिए गीता जी कही है। हम अपने कर्त्तव्य कर्मों को जितनी श्रद्धा से करते हैं, उतना ही अधिक शान्ति को प्राप्त होते हैं। अतः जीवन में इस अमूल्य शान्ति को प्राप्त करने के लिए हमें कर्मयोग का आश्रय लेना ही चाहिए।



हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

<https://vivechan.learngeeta.com/feedback/>

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

<https://gift.learngeeta.com/>

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करें।

<https://vivechan.learngeeta.com/>

॥ गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ॥
॥ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥